दक्षिण भारत का जैन-पुरातत्त्व

डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'...

- आन्ध्र -

आन्ध्रप्रदेश में जैनधर्म मगध से पहुँचा। नयसेन ने धर्मामृत में जैन राजा को अंगदेश से आंध्र के भत्तिपोल में पहुँचने की कथा को तीर्थंकर वासुपूज्य तथा इक्ष्वाकु काल में माना है। हरिषेण के वृहत्कथाकोष (९३१ ई.) में कुछ और ही लिखा है। जो भी हो, पर इतना निश्चित है कि वहाँ जैनधर्म महावीर से पहले अस्तित्व में था।

आचार्य कुन्दकुन्द आंध्र और कर्नाटक के सीमावर्ती कोण्डकुन्द नगर के ही थे, जिनका समय ल. प्रथम शती है। जैनसंस्कृति में महावीर के बाद उन्हीं का नाम लिया जाता है। कुन्दकुन्दाम्नाय नाम से जैनधर्म को पहचाना जा सकता है। कोण्डकुन्द पहाड़ी पर एक छोटी सी गुफा है जो उनकी तपस्या स्थली मानी जाती है। गोदावरी जिले के आर्यवतम में एक जैन-टेराकोट मिला है जिसकी पूजा की जाती है। मथुरा में भी प्रथम शती का ऐसा ही टेराकोट प्राप्त हुआ है। यहाँ छह जैन मूर्तियाँ मिली हैं, लगभग इसी समय की। आर्यावतम से मिलती-जुलती मूर्तियाँ गौतमी और ककिनद में भी पाई गई हैं।

कुन्दकुन्दाम्नाय में ही उमास्वाति और समन्तभद्र हुए जो दक्षिण के ही थे। नन्दि, देव, सिंह, सेन आदि के नाम से बाद में गणगच्छ बने और सभी जैनाचार्य इन्हीं गणगच्छों की परिधि में आ गए। समन्तभद्र के बाद सिंहनन्दि पेरूर (आंध्र) में ही हुए वक्रगच्छ में। पूज्यपाद, अकलंक, वासवचंद्र, बालसरस्वती, गोपनन्दि आदि प्रमुख आचार्य आंध्र से ही रहे हैं।

६०९ ई. में पश्चिमी चालुक्यवंशी पुलकेशी द्वितीय ने कलिंग पिष्टपुर वेंगि आदि पर विजय पाते हुए आगे दक्षिण में बचा वेंगि का राज्य अपने छोटे भाई कुब्जविष्णुवर्धन को दिया ६२७ ई. में। इस मल्लिकार्जुन पहाड़ी का संबंध श्वेताम्बर संप्रदाय से भी रहा है। चद्दपट्ट जिले में दिगंबर आचार्य वृषभ के आवास की सूचना सन्यसिगुण्डि गुफा से मिलती है। विष्णुवर्धन तृतीय (७१८-७५५ ई.) का एक शिलालेख मिला है, जिसमें कहा गया है कि मुनिसिकोन्द्र जिस पर किसी और ने अधिकार कर लिया था, पुनः कीलभद्राचार्य और उनकी परंपरा को अर्हत जिनपूजा के लिए दिया जाता है। विजयवाड़ा में अब यह सब मात्र ऐतिहासिक उल्लेख रह गए हैं। गुण्डिवाड़ा और धर्मावरम में अवश्य कुछ जैनमूर्तियाँ इस काल की पाई जाती हैं।

राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष जैन-धर्मावलम्बी था। उसने विरुदंकर्यपोलु में एक जैनमंदिर बनवाया। यहाँ की तीर्थंकर महावीर की मूर्ति मद्रास संग्रहालय में रखी गई है। भीम शल्कि ने हनुमानकोंड दुर्ग में जैन मंदिर बनवाए, यहाँ के पद्माक्षि जैन मंदिर में यक्ष-यक्षी की सुंदर प्रतिमा मिली है। वेंगि के गुणग विजयादित्य ने भी जल्लुर में जैनवस्ती का निर्माण कराया। रामतीर्थम में दो जैन-गुफाएँ हैं। यहीं पास में गुरुभक्त पहाड़ी पर एक जैनगुफा है, जिसमें अनेक जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

दनवुलपदु (चुटुपट्ट जिला) में नित्यवर्ष इन्द्र तृतीय (८१४-१७ ई.) के काल की एक वृहदाकार जैन-वसदि मिली है, जिसमें दो मंदिर, चार तोरण, दो चौमुख, एक तीर्थंकर पादपीठ, दो दसफुटी पार्श्व प्रतिमायें और एक पद्मावती-प्रतिमा खुदाई में प्राप्त हुई है। दुर्गराज ने कटकाभरण नामक जिनालय बनवाया और उसके साथ ही व्यय के लिए एक ग्राम दान में दिया। इस मंदिर के मुख्य आचार्य थे कोटिमदुवगणी और यापनीयसंघ के श्रीमंदिर देव।

पश्चिम गोदावरी जिले में पेदिमिरम में एक जैन पल्लि है, यहाँ जैनमूर्ति मिली है। अम्मराज द्वितीय के काल में भी कचमारू में जैनधर्म लोकप्रिय था। अरहनन्दि के आग्रह पर अम्मराज ने कलचम्बरू गाँव का दान किया जैनमंदिर के लिए, जो आज नष्ट हो गया है। ताम्रपत्र इसका मिला है। एक अन्य लेख भी मिला है, जिसमें विजयवाडा में इसी राजा द्वारा निर्मित दो जिनालयों का उल्लेख है। वहीं बोधन में श्रमण बेलगोल से भी बड़ी बाहुबली मूर्ति की स्थापना की गई थी पर वह भी आज नहीं मिलती। यह बोधन शायद पोदनपुर रहा होगा। बद्डेग ने विमुलवाड़ा में और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके पुत्र ओमकेशरी तृतीय ने सोमदेवसूरि को एक जिनालय भेंट किया था। यहाँ अनेक जैन मूर्तियाँ मिली है, इस काल की। हैदराबाद से लगभग १५० कि.मी. दूर कुलचारम ग्राम में ऋषभदेव की एक प्राचीन भव्य प्रतिमा मिली है।

कल्याणी चालुक्य में तैलप द्वितीय ने जैनधर्म को अच्छा प्रश्रय दिया। पोटलचेरूव (पाटनचेरू) में हैदराबाद से लगभग १६ कि.मी. दूर है, जहाँ अनेक जैनमंदिर और मूर्तियाँ आज भी सुरक्षित हैं। वर्धमानपुर (वड्डमानु) शायद यही रहा होगा। यहाँ भी मूर्तियाँ मिली हैं। बड्डमानु के आगे पेदतुंबलम में एक बड़ी जैन बसदि के चिह्न मिलते हैं, जो वीरशैवों द्वारा विनष्ट कर दी गई। यहीं एक पार्श्वनाथ मूर्ति भी मिली है। गडबल के पास पुड्डुल में भी जैन-पुरातत्त्व पाया जाता है।

हनुमानकोण्डा के समान अडोनी में एक जैन-गुफा मिली है। जिसमें पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। पुदुर से भी बड़ा जैन केन्द्र नायकल्लु रहा है, जहाँ एक बड़ी जैन वसदि के चिह्न बिखरे पड़े हैं। पाँच फीट ऊँची एक सुंदर पार्श्वनाथ मूर्ति भी यहाँ मिली है। रायदुर्गम पहाड़ी पर भी चालुक्य कालीन जैनमंदिर है। कम्बदुर (अनन्तपुर), योगरकुन्त, अमरपुरम्, कोट्टशिवरम आदि स्थानों पर भी बहुत जैन-पुरातत्व प्राप्त हैं। यहाँ तैलप द्वितीय द्वारा लेख भी ताडिपर्ति में दो जिनालय थे। चन्द्रप्रभ और पार्श्वना के जिन्हें १२०८ ई. में उदयादित्य ने बनवाया था, उसने कुछ गाँव भी इन मंदिरों को दिए थे। पर आज उनका कोई चिह्न नहीं मिल रहा है। वारंगल किले में चार जैनमंदिर हैं। काकतीय राजाओं की राजधानी बनने के पहले ही यहाँ एक बड़ी जैन वसदि थी।

तेलंगाना प्रदेश में और भी अन्य जैन वसदियां है। तेलंगाना शिलालेखों में ३५ शिलालेख हैं, जो जैन पूजादान की बात करते हैं उज्जिलिकिले के बडिड जिनालय में। उसी पाषाण पर एक अन्य लेख खुदा है जो इन्द्रसेन पंडित नाम से दान का उल्लेख करता है। यह दान (१०९७ ई.) जैनालय को चलाने के लिए दिया गया था। वीरशैवों ने इस जिनालय को बाद में अपने अधिकार में कर लिया। अन्य शिलालेखों में नं. दो का शिलालेख राजा बेक्कल्लु का है, जिसने गुणसेन को ग्राम दान दिया। नं. ३२ का कल्याण चालुक्य का है, जिसने १११९ ई. में ब्रह्मेश्वर देव को पार्श्वनाथ जिनालय के खर्च के लिए ग्रामदान दिया। राजा विक्रमादित्य के काल में भी जैन बस्तियां बनती रही हैं यहाँ।

वेलन्तिचोल-काल भी जैन संप्रदाय के लिए अनुकूल रहा है। गोंक द्वितीय जैन राजा था। उसने गुन्तूर जिले में मुनुगोड्डु गाँव में पृथ्वीतिलक नामक जैन वसति बनवाई थी। गोंक प्रथम ने भी यहाँ एक जैनमंदिर बनवाया था। जिसमें अनेक जैनाचार्य रहते थे। तेनालि में भी एक जैन वसति थी। गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच कोलानियों का भी राज्य रहा है। उन्होंने भी जैन मंदिरों को दान दिया। अछन्त आदि अनेक वसतियाँ है, यहां पेनुगोण्डा आदि गाँवों में।

हैहयकाल में गोदावरीडेल्टा में अनेक जैनमंदिरों का निर्माण हुआ। ततिपाक में एक बड़ा जिनालय है। नेडनुरू में भी जैनपुरातत्त्व मिलता है। लोल्ला में एक अंबिका की मूर्ति मिली है। हैहय वंश वस्तुतः जैनधर्मावलंबी था। इसलिए इस काल में जैन वसदियों का निर्माण खूब हुआ। पीठपुर में उनकी बनवाई दो जैन मूर्तियां मिली हैं। गौतमी के किनारे बसे सिला, काजुलुरू आदि अनेक स्थानों पर जैन-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ककिनद के पास नेमम् में अनेक जैनमंदिरों के अवशेष मिले हैं।भोगपुर के पास मन्नमनयक द्वारा निर्मित (११८७ ई.) एक राज्य जिनालय मिलता है। आंध्र के दक्षिण में चित्तोर जिले में निद्र और निदथुर जैनमंदिर खड़े हैं।

११६२ ई. में विज्जल कलचुरी राजा ने छिपगिरि में एक जैनमंदिर बनवाया था जो आज भी है।

विज्जल ने अपने एक मंत्री के दामाद वासववीर को कोषाध्यक्ष बनाया। वासव पक्का शैव था। उसने विज्जल की हत्या करा दी और वहाँ से भाग गया। बाद में उसने हजारों की संख्या में जैनों को मारा और उनके मंदिरों को नष्ट किया अकेले ओट्टवछेरुवु में ५०० वसदियों को नष्ट किया। पालकुरुकि सोमनाथ कवि के अनुसार कोलुनुपाक के सारे जैन मंदिर वीर-शैवों ने हथिया लिए और अन्य जैन-मंदिरों को धूल में मिला दिया।

आन्ध्र के इतिहास और संस्कृति के निर्माण में जैनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। यद्यपि तेलगू में जैनसाहित्य अधिक तो नहीं मिलता पर उनके द्वारा किए गए कल्याण-कार्य आज भी देखे जा सकते हैं। सिवग्गण, आर्यावतम, पेनुकोण्डा, भोगपुरम्, हनुमानकोण्डा, वारंगल किला आदि स्थानों पर बनाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गए तालाब आज भी जनता के उपयोग में आ रहे हैं। वीर शैवों द्वारा नष्ट किए जाने के बावजूद जैनधर्म आन्ध्र में जीवित रहा, यह उसके लोकमांगलिक कार्यों का ही फल कहा जाना चाहिए।

केरल

केरल में जैनधर्म कर्नाटक या तमिलनाडु से गया होगा। वह यहाँ ई.पू. तृतीयचतुर्थ शताब्दी तक तो पहुँच ही गया था। अन्य प्रदेशोंकी तरह यहाँ भी जैनधर्म अच्छी स्थिति में रहा है पर अनेक कारणों से उसका सम्यक् अध्ययन नहीं हो पाया। कभी जैन-स्थानों को बौद्ध बता दिया गया तो कभी वैदिक बना लिया गया, कभी उन्हें नष्ट कर दिया गया तो कभी मस्जिदों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। कुणवसिस कोट्टम् का प्रसिद्ध जैनमंदिर हैदरअली की विनाशलीला का शिकार बन गया। टीपू सुल्तान ने भी ऐसे ही घृणात्मक कार्य किए हैं। दसों जैन-मंदिरों ने मस्जिदों का रूप ले लिया।

वर्तमान तमिलनाडु के दो जैनस्थल चित्रल और नागरकोविल प्राचीन त्रावनकोर के भाग थे। अब कोचीन और मलाबार को मिलाकर केरल राज्य बना दिया गया। यहाँ प्राकृतिक गुहामंदिर मिलते हैं, जिन्हें समाधि-स्थल का रूप दे दिया गया -मूनिमडा कहकर या फिर नए मंदिर बना लिए गए। अरियन्नूर कदाचित् प्राचीनतम स्थल है, जहाँ पर्वत को काटकर समाधि के योग्य स्थान बनाया गया था।

इसी तरह कल्लिल का गुहा मंदिर है, जिसमें महावीर, पार्श्वनाथ और पद्मावती की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। महावीर की मूर्ति अपरिपूर्ण है। लोगों की धारणा है कि देवगण उसे पूरा करने आते रहते हैं। महावीर मूर्ति गुफा की पृष्ठभाग की दीवार पर खुदी है, सिंहासन में बीच में सिंहलांछन है, ऊपर त्रिछत्र है, चारों के साथ गंधर्व है, दायीं ओर पद्मावती है, और बायीं ओर पार्श्वनाथ मूर्ति है। इसका समय लगभग आठवीं शती होना चाहिए। पर डॉ. राजमल जैन इसे और भी प्राचीन मानना चाहते हैं।

वायनाड जिले के सुल्तान बत्तारी में एक ध्वस्त जैन मंदिर देखा जा सकता है, जहाँ के स्तम्भों पर बड़ी सुंदर सर्पाकृतियाँ उकेरी गई है। ये आकृतियाँ आज भी देखी जा सकती हैं। प्राचीनकाल में केरल में जैनधर्म काफी लोकप्रिय था। केरल को, उस समय चेरनाडू कहा जाता था। तमिल महाकाव्य शिलप्पधिकारं (पहली, दूसरी शती) के रचयिता इलंगोवडिगल चेरनाडु के युवराज थे। शिलप्पधिकारं के गंभीर अध्ययन से पता चलता है कि इलंगोवडिगल पक्के जैन थे। केरल के जैनधर्म को समाप्त करने में शंकराचार्य का विशेष हाथ रहा है। पुरातत्त्व विभाग यदि प्राचीन स्थलों की खुदाई करे और वैदिक मंदिरों और मस्जिदों की गहराई से छानबीन करे तो जैनधर्म के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ सकता है।

मुसलमानों ने भी जैनों पर कम अत्याचार नहीं किए। अत्याचारों के कारण ही जैन परिवर्तित होकर शैव, वैष्णव और मुस्लिम बन गए। 'जैन अल्लाउदीन' जैसे नाम यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं कि परिवर्तित जैन-समुदाय आज भी जैनधर्म को अपने में समाए हुए है।

कर्नाटक

दक्षिण भारत में जैनधर्म के प्रचार प्रसार में ई.पू. चतुर्थ शती के अंतिम चरण के आसपास श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के आगमन से तेजी अधिक आई। श्रीलंका में तो जैनधर्म इसके पूर्व था ही। भद्रबाहु-संघ का प्रवेश कर्नाटक में कदाचित्, उत्तर भारत के मालवा क्षेत्र से हुआ होगा। कर्नाटक से ही फिर जैन धर्म तमिल क्षेत्र में पहुंचा होगा। श्रवणवेलगोल के शिलालेखों से इस परंपरा की पुष्टि होती है। चालुक्य, राष्ट्रकूट, गंग आदि वंशों ने जैन धर्म का राज्याश्रय और उसका अच्छा प्रसार-प्रसार किया। सारा प्रदेश जैनमय सा हो गया। यहाँ की कुरुम्बर जाति मूलतः जैन थी जो सारे दक्षिण में फैली थी। मद्रास के पास पुलाल में उसका प्रथम शती ई.पू. का आदिनाथ का एक भव्य मंदिर है। ऐसे ही अनेक उदाहरण मिलते हैं। चामुंडराय, इरगप्पन तथा हुल्लर जैसे अमात्यों और राजाओं ने कर्नाटक में जैन-पुरातत्व को काफी समृद्ध कर दिया है।

मैसूर

ऐहोल (बीजापुर) में मेगुटिनाक जिनालय में सुरक्षित यह शिलालेख शक सं. ५६१ (६३४ ई.) का है, जिसे कवि रविकीर्ति ने बड़ी प्रांजल संस्कृत भाषा में कन्नड़ लिपि में लिखा। इसमें चालुक्यवंश की कीर्ति का वर्णन करते हुए सत्याभय पुलकेशि की जैनयात्रा और जिनमंदिर निर्माण का वर्णन है। दिग्विजय का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन करने वाला यह एक सुंदर काव्य है। इसके अतिरिक्त मरोल (१०२४ ई.) अरसिबिदि में प्राप्त आलेख भी महत्त्वपूर्ण है। अक्कादेवी, जयसिंह द्वितीय की बहिन ने जैनधर्म का अच्छा प्रसार किया। होनवाड व हुंगुण्ड जैनसंस्कृति के गढ़ थे।

बेलगाँव क्षेत्र प्राचीन काल में कुण्डी या कुहुन्डी मण्डल कहा जाता था जो शिलाहार और रट्ट परिवारों के अधिकार में था। कोन्नुर हलसी (खानपुर) और सौनदत्ती अच्छे जैन-केन्द्र थे। गोक्का प्लेट देज्जा महाराज के दान का उल्लेख करता है आर्हत पूजा के लिए। यहाँ के किले में जैन-पुरातत्त्व दर्शनीय है। यहाँ १०८ जैनमंदिर रहे हैं। कमलवसदि दर्शनीय है।

अदूर में दो शिलालेख मिले हैं, जो जैनमंदिर के लिए भूमिदान का उल्लेख करते हैं। नारायण-मंदिर के दो शिलालेख जैनों के हैं। मूलगुण्ड और लक्कुण्डि उत्तम जैनकेन्द्र थे।

उत्तर कन्नड जिले में १५ से १७ वीं शती तक का जैन पुरातत्त्व मिलता है। दक्षिण कन्नड जिला तो और भी समृद्ध है इस दिशा में। बेल्लरी जिले में गुफा-जैन-मंदिर है, जिसमें बहुत सारी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। कोगाली जैन शिलालेख (१० वीं शती) है नन्दि बेवरू मन्नेरा मसलेलाद कुदतनी आदि स्थान ऐसे हैं, जो जैनकेन्द्र माने जाते हैं।

वस्तुतः कर्नाटक का चप्पा-चप्पा जैन-संस्कृति का परिचय देता है। यहाँ सभी स्थानों के पुरातत्त्व के विषय में लिखना संभव नहीं है। पर कतिपय महत्त्वपूर्ण स्थलों का उल्लेख करना अत्यावश्यक है। उदाहरणतः बीदर जिले का मलखंड राष्ट्रकूट राजाओं का प्राचीन मान्यखेटनगर है, जो अमोघवर्ष के समय जैन-संस्कृति का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। लगभग २०० वर्षों तक यह नगर जैनकेन्द्र बना रहा है। यहाँ सोमदेव, पुष्पदन्त जैसे मूर्धन्य आचार्यों ने साहित्य सृजन किया। यहाँ नेमिनाथ वसति नाम का लगभग ८वीं शताब्दी का एक जैनमंदिर है।

बीजापुर का विशाल जैनमंदिर १५वीं शताब्दी में मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। यहाँ पार्श्वनाथ मंदिर कुछ समय पहले जमीन से निकाला गया है। यहाँ की करामुद्दीन मस्जिद भी मूलतः जैनमंदिर ही है। इसी जिले में ऐहोल एक गाँव है, जो किसी समय चालुक्य की राजधानी रहा है। यहाँ के मेगुटी मंदिर में जैनाचार्य रविकीर्ति द्वारा लिखित सन् ६३४ ई. का शिलालेख है, पुलकेशी द्वितीय के संदर्भ में। अकलंक इन्हीं रविकीर्ति के शिष्य थे। वादामी का मेगण वसदि और लक्कुडि का ब्रह्मजिनालय और पट्टदकल की जैनवसदि कला की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, जहां मध्यकालीन गुफाएँ और जैनमंदिर हैं।

रायपुर जिले में हम्पी का गानिगिति मंदिर बड़ा प्रसिद्ध है। हम्पी के महल-क्षेत्र के आसपास खुदाई की गई थी, जिससे दो जैनमंदिर प्रकाश में आए हैं। वैसे यहाँ काफी मंदिर हैं। पान सुपारी जैन मंदिर में एक संस्कृत शिलालेख मिला है। जिसके अनुसार देवराज द्वितीय ने सं. १४२६ में पार्श्वनाथ चैत्यालय बनवाया था। बल्लादी जिले में हरपनहल्ली की होस-वसदि में कलात्मक नाग प्रतीक दर्शनीय है। यहाँ का उज्जिम जैन-मंदिर शैवों के अधिकार में है। हुवली का अनन्तवसदि मंदिर कलात्मक है, जहाँ दसवीं शती की धरणेन्द्र पद्मावती के साथ तीर्थंकर पार्श्वनाथ की सुंदर प्रतिमा कला सुरक्षित है।

धारवाड के लक्ष्मेश्वर नगर में ५३ शिलालेख हैं, जिनमें इस नगर के अनेक नाम मिलते हैं। यहाँ के शंख वसदि मंदिर में प्राप्त ७०० ई. के शिलालेख के अनुसार अकलंक परंपरा के पंडित उदयदेव चालुक्य राजा विजयादित्य द्वितीय के राजगुरु थे। महाकवि पम्प का आदिपुराण इसी मंदिर में लिखा गया था। यहीं के अनन्तनाथ वसदि में पद्मावती और सरस्वती की सुंदर मूर्तियाँ है। लक्ष्मेश्वर के समीपवर्ती बंकापुर में गुणभद्राचार्य ने अपना उत्तर पुराण पूरा किया था। यहाँ के कुछ जैनमंदिर आज मस्जिदों के रूप में विद्यमान हैं। कोटुमचगी का पार्श्वनाथ मंदिर नरेडिल का नारायण मंदिर, बुंदरसिंगी की आदिनाथ प्रतिमा, कलस्नयु का जैन वसदि, आरट्टकाल का पार्श्वनाथ वसदि, गुडिगेरी का महावीर वसदि, हवेरी का मुद्दु माणिक्य वसदि, अम्मिनवाबी का पार्श्वनाथ वसदि आदि मंदिरों का पुरातत्त्व भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कारथीड जिले का उत्तर कनाड़ा भाग कभी वनवासी प्रदेश कहा जाता था। पुष्पदंत भूतबलि द्वारा की गई षट्खण्डागम की रचना का श्रेय इसी प्रदेश को जाता है। ग्रेल्सोप्पा में ज्वालामालिनी की मूर्ति, हाडुवल्ली में त्रिकाल चौबीसी की कांस्यमूर्ति, गुंडबल की पार्श्वनाथ की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय हैं। हुमचा का इतिहास लगभग १५०० वर्ष पुराना है। इसे अतिशय-क्षेत्र कहा जाता है। यहाँ २२ शिलालेख हैं, जिनमें सान्तर राजवंश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का इतिहास दिया हुआ है। तदनुसार जिनदत्त राजा को पद्मावती की कृपा से लोहे को भी सोना बनाने की शक्ति प्राप्त हुई थी। इसी तरह बकोड दन्दलि के चिक्कमागुडि, उद्रि आदि स्थानों की वसदियाँ भी पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

चिक्कमंगलूर जिले के नरसिंह राजपुर में अनेक जैनमंदिर हैं, जिनमें चन्द्रप्रभ की यक्षी ज्वालामालिनी की कलात्मक प्रतिमाएँ हैं। यहीं समीप में श्रृंगेरी मठ है, जो किसी समय जैनों का गढ़ था। यहाँ शारदा मंदिर में एक जैन स्तम्भ पड़ा हुआ है। यहीं पास ही आचार्य कुन्दकुन्द की जन्मभूमि कुन्दकुन्दबेट्ट है, जहाँ कुन्दाद्रि पर उनके चरण बने हुए हैं। इस पर्वत पर खण्डहर, मूर्तियाँ एवं कलात्मक शिलाखण्ड बिखरे पड़े हैं।

तमिलनाडु

तमिलनाडु में जैन धर्म ने कर्नाटक से प्रवेश किया होगा। श्रीलंका में महावंश के अनुसार पाण्डुकाभय (३३७-३०७ ई.पू.) ने निर्ग्रन्थ ज्योतिय के लिए अनुराधापुर में एक मंदिर बनवाया था। इसका तात्पर्य है ई.पू. चतुर्थ शती तक जैन धर्म दक्षिण में पहुँच चुका था। देवचन्द्र ने राजवलिकषे में लिखा है कि भद्राबाहु ने विशाखाचार्य (चन्द्रगुप्त मौर्य २९७ ई. पू.) को निर्देश दिया था कि वे चोल पांडदेशों में और आगे जायें। रत्ननंदि के भद्राबाहुचरित (१५ वीं शती) में उनके चोल देश में जाने का उल्लेख भी है।

मद्रास के समीपवर्ती तिरुनेलबेली, रामानंद, त्रिची, पुदुक्कोट्टई, मदुराई और तिन्नबेलि जिलों में जैन-पुरातत्त्व बहुतायत में मिलता है। यहाँ के अधिकांश जैन-शिलालेख तृतीय शती ई.पू. के हैं। यहाँ तथा आरकोट जिले में शताधिक जैनगुफाएँ हैं, उत्तरी आरकोट में पंच पाण्डवमलई और तिरुमलई पहाड़ियाँ हैं, जहाँ जैनपुरातत्त्व भरा पड़ा हुआ है। विलपक्कम में एक जैन मूर्ति मिली है। यहीं नागनाथेश्वर मंदिर में ८४५ ई. का एक लेख मिला है, जिसमें लिखा है कि यहाँ पास में वल्लिमलै और तिरुमलै जैन गुफाएँ हैं। तिरुमलै में धर्मचक्र आदि को दर्शाती अच्छी पेंटिंग हैं। वेदोल के पास विदल और विदरपल्ली है, जो जैन-वसतियाँ मानी जाती हैं। पोन्नुर में आदिनाथ का बड़ा मंदिर है। यहां ज्वालामालिनी की अच्छी मूर्ति है। इसी के पास नीलगिरि पहाड़ी है, जिस पर हेलाचार्य की सुंदर मूर्ति है, ज्वालामालिनी के साथ। विद्यादेवी की भी मूर्ति यहाँ मिलती है। मद्रास से २५ मील दूर उत्तर पश्चिमवर्ती पुलाल में आदिनाथ का प्रथम शती ई.पू. का एक भव्य जैनमंदिर है।

दक्षिण आरकोट जिले में पाटलिपुर नगर है, जहाँ प्रथम शती में द्राविड संघ रहा करता था। छठी शती तक वह यहाँ बना रहा। यह तथ्य बिल्लुपुर तिरुनरंगोण्डई में प्राप्त जैनपुरातत्त्व से सिद्ध होता है। चोलवंदिपुर में अन्दिमलै के आसपास अनेक जैन स्थापत्य है। जहाँ महावीर आदि तीर्थंकरों की मूर्तियाँ मिली हैं और चट्टानों पर खुदी भी हैं। गिन्जी तालुका तो आज भी जैन पुरातत्त्व को सहेजे हुए। यहां एक जैनमठ भी है। चित्रकुट में दो जैन. मंदिर भी है, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ के।

तिरुपरुट्टिकुनरम (जिनकाञ्ची)-- जिनकाञ्ची मद्रास से लगभग ६० कि.मी. दूर कान्ची का एक भाग है, जो तिरुपरुट्टिकुनरम ग्राम से संबद्ध है। बॅगेस ने इसे दक्षिण के अर्काट जिले के चित्रामूर ग्राम से समीकृत किया था, जो सही नहीं है। दक्षिण में चार विद्यास्थान माने जाते थे-जिनकान्वीपुर कोल्हापुर, पेनुकोण्डा और देहली। जिनकांचीपुर प्रारंभ से ही जैन, बौद्ध और वैष्णव संस्कृति का गढ़ रहा है। ह्यूनसांग ६४० ई. के लगभग यहाँ पहुँचा था। उसने यहाँ के जैनों की बहुसंख्या का उल्लेख किया है और अस्सी जैन मंदिरों के अस्तित्व की सूचना दी है।

यहाँ प्राप्त शिलालेखों से पता चलता है कि यहाँ मुख्यतः दिगंबर-जैनधर्म का प्रचार-प्रसार हुआ है। दिगंबर जैनों के चार संघ हैं-मूल, द्राविड, काष्ठा और यापनीय। इनमें दक्षिण में द्राविड संघ का प्रभाव अधिक रहा है। जिनकांची के शिलालेखों में गुरु और शिष्य की व्यवस्थित धर्मसत्ता मिलती है। कुन्दकुन्दाचार्य समन्तभद्र, सिंहनन्दी पूज्यपाद, अकलंक आदि आचार्यो का सम्बन्ध यहाँ से रहा है। अकंलक की शास्त्रीय वादविवाद परंपरा कांची से लगभग २० कि.मी. दूर तिरुप्पनकूट से संबद्ध है, जहाँ एक चित्र में ओखल है, और सामने जैनमुनि उपदेश दे रहे हैं।

अकलंक के बाद जिनकांची का संबंध आचार्य चन्द्रकीर्ति, अनन्तवीर्य, भावनन्दि, पुष्पसेन आदि आचार्यों से रहा है। पुष्पसेन का राजनीतिक प्रभाव बुक्का द्वितीय (१३८५-१४०६ ई.) के सेनापति और मंत्री इरुगप्पा के ऊपर अधिक था। उसी के परिणामस्वरूप विजयनगर के राजाओं ने उन्हें संरक्षण दिया। यहीं उनका भी समाधि-स्थल है, मंदिर के भीतर मुनिवास में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ के मंदिरो में चित्रकला के अवशेष भी दृष्टव्य हैं। उड़ीसा में रामगढ़ पहाड़ी की जोगी मेर गुफा में भित्तिचित्रों के अवशेष को प्राथमिक स्तर का कह सकते हैं, सित्तन्नवासल चित्र भी इसी कोटि के हैं। धर्मप्रचार की दृष्टि से जैनों ने चित्रकला का अच्छा उपयोग किया है।

पुटुक्कोत्तई

पुटुक्कोत्तई (तमिलनाडु) जिले में काफी जैन-पुरातत्व मिलता है। लगभग १६ कि.मी. पर सित्तनवसल प्रधान केन्द्र है। इसमें एक जैनगुफा, जैनमंदिर और भित्तिचित्र है। जैनगुफा लगभग द्वितीय शती ई. पू. की मानी जाती है। ब्राह्मीलिपि में लेख भी है। ७-८ वीं शती तक यहाँ श्रमणों का आवास रहा है। समीपवर्ती पहाड़ी पर गुहा-मंदिर है जो लगभग ७वीं शती का है। इसमें तीन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं--ऋषभदेव, नेमिनाथ और महावीर। मंडप की एक दीवार पर पार्श्वनाथ का चित्र है, जिस पर श्री तिरुवसिरियम लिखा है, जिसका अर्थ है महान् आचार्य। समवशरण आदि के भी सुंदर भित्तिचित्र हैं। समणरमेडु, तेक्कादूर आदि स्थानों पर भूगर्भ से जैन मूर्तियाँ निकली है।

तेणिमलइ की समीपवर्ती पहाड़ी पर जैनसाधुओं के लिए एक आवास स्थान-सा बना है, जो लगभग प्रथम शती का होगा। ब्राह्मीलेख भी है। यहाँ ८वीं शती तक श्रमण रहा करते थे। यहाँ तीन जिनमूर्तियाँ भी हैं।

पुट्टुक्कोत्तई से १८ कि.मी. दूर नारन्तमलइ पहाड़ी है जो समतटकुडगु के नाम से जानी जाती है। यहाँ दो मंदिर हैं, एक शिव का और दूसरा अर्हतजिन का। अर्हतजिन का मंदिर १३वीं शती में वैष्णव-मंदिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया और फिर उसे पंतिनेनभूमि विन्न गरूलवार केलि कहा जाने लगा। अर्धमंडप में जैनाचार्य नेमिचंद का उल्लेख है शिलालेख में। १२वीं शती में इस मंदिर को भूमिदान भी दिया गया था। लगभग १२२८ ई. में वैष्णवों ने इसे अपने अधिकार में ले लिया मरवरमन सुन्दर पांडवा के काल में। यहां के अर्धमण्डप को ही महामण्डप के रूप में बदल दिया गया।

आलुरुंदरमलइ नरतमलइ के पास ही है। इसमें भी लगभग प्रथम सदी का गुहामंदिर है। जिसमें ध्यानमुद्रा में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। यहीं १०वीं शती का लेख भी है। तदनुसार धर्मदेवाचार्य कणकचंद्र पण्डित का शिष्य था, जिसे सुंदर पाण्ड्या के काल में भूमिदान भी मिला था। १३वीं शती तक यह स्थान जैन-श्रमण वसति बना रहा।

बोम्मइमलइ में भी एक गुहा मंदिर है, जिसमें उल्लेख है कि जैन-श्रमणों के लिए यहाँ ७५३ ई. सन् में भूमिदान मिला था। सदियरपइ में ८वीं शती की महावीरमूर्ति है एक गुहामंदिर में। इसे सुंदर पांड्या के ही समय काफी भूमिदान दिया गया था। ८वीं से १३वीं शती तक यह भी एक जैनकेन्द्र रहा है।

मलयक्कोइ पुटुक्कोत्तइ से १८ कि.मी. दूर है। यहाँ एक गुफामंदिर में गुणसेन नामक जैन मुनि का उल्लेख है शिलालेख में। यहाँ से १२ कि.मी. दूर पोत्तम्बुर में एक जिनमूर्ति मिली है। जो गणेश के नाम से पूजी जाती है। इसे ग्रामवासी मोत्तईपिल्लयर कहते हैं। यह मूर्ति १२वीं शती की है। आदित्यचोल (८८८ ई.) के शिलालेख से पता चलता है कि यह एक जैनकेन्द्र था ८वीं शती में। इसी के पास चेत्तियति है जो समनर कुण्डु कहा जाता है। यह भी एक जैनकेन्द्र रहा है। यहाँ एक मंदिर है, जिसमें पार्श्वनाथ और महावीर की सुंदर मूर्तियाँ हैं १० वीं शती की अम्बिका की भी एक अच्छी मूर्ति है। यहाँ के लेख में मतिसागर मुनि का उल्लेख है, दयापाल और वादिराज उनके शिष्य थे।

चेत्तिपत्ति के पास कयममत्ति है, जहाँ जैनमंदिर के अवशेष पड़े हुए हैं। इसे 'समदर तिदल' कहा जाता है। सिद्धासन में एक मूर्ति मिली है। यहाँ इसी के साथ एक जैनमठ भी था जिसे तिरुवयतलमदरम कहा जाता था। जिसे नगरत्तर आदि श्रेष्ठियों ने बनवाया था।

सित्तनवसल के पास ही अन्नवसल है, जो किसी समय समर्थ जैनकेन्द्र रहा है। यद्यपि यहाँ एक मंदिर ध्वस्त हो गया है पर तीर्थंकर मूर्तियाँ अच्छी हालत में मिली हैं। कोन्नगुडु में महावीर की मनोरम मूर्ति मिली है ११वीं शती की। सोमपत्तुर में एक तालाब के किनारे जैनमंदिर है जो ध्वस्त हो गया है इसके स्तम्भ वगैरह, तेन्नगुडि के शिवमंदिर में लगे है। यहाँ तीर्थंकर और यक्षी मूर्तियाँ मिली हैं।

पुदुक्कोत्तइ में एक जैन-मूर्ति-संग्रहालय है, जहाँ आसपास की मूर्तियों को एकत्रित कर दिया गया है। मोसक्कुडि से प्राप्त मूर्तियां कलात्मक दृष्टि से बहुत अच्छी हैं। आदिनाथ पार्श्वनाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और महावीर की भी अलंकृत मूर्तियाँ है,१० से १५वीं शती के बीच तक की।

तामिलनाडु में ५३० जैन-शिलालेख मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि यहाँ ८-१०वीं शती के पूर्व जैनधर्म अच्छी स्थिति में था। द्वितीय शती ई. पू. से मदुराई तिरुनेलवेली, रामानद आदि जिलों में जैन अवशेष मिलने लगते हैं। चंद्रगुप्त का संघ तामिलनाडु में ई.पू. तृतीय शती में ही फैल गया था। श्रमण - वेलगोला यात्राकाल में ही संगमकाल में चेर, चोल और पांड्य नरेशों ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में खूब सहयोग दिया। तिरुप्परकुनर और मुत्तुपत्ति रिकार्ड से पता चलता है कि श्रीलंका आदि से जैन-साधु वहाँ आते रहते थे। प्रथम शती में आर्यनन्दी और बालचन्द्रदेव ने मदुराई में १२३ वीं शती में जैनधर्म का प्रचार किया। दान और सल्लेखना के आलेख पचासों हैं। जिनसे जैनधर्म की लोकप्रियता का पता चलता है।

मदुरै में तीन प्रकार का जैन पुरातत्त्व मिलता है-(१) शिलालेखों सहित जैनगुफाएँ, (२) पाषाण चट्टानों पर उत्कीर्ण जैन-देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और (३) वत्तेलुत्तु लिपि में लिखे तमिल लेख। पांड्य राजाओं के शासनकाल में मदुरै एक सशक्त जैन केन्द्र रहा होगा। तेवरमतथा स्थल पुराण के अनुसार अनैमलै नागमलै और पथुमलै आदि पहाड़ियों पर प्राप्त जैन-पुरातत्त्व इसका प्रमाण है। अरिट्टपट्टि, मंगलं, मुत्तुपुट्टि, कोंगर पुलियंकुलं, तिरप्परे कुंजरं, वरिच्चयु, अलगरमलै, करुंगलकुडि, किलुवलजू, विक्किर मंगलं, मेत्तुपेत्तु (सिद्धरमलइ) आदि स्थल भी उदाहरणीय हैं।

मदुरै के पास तिरुपरकुनर में सरस्वती तीर्थ है, जहाँ पार्श्व की और सुपार्श्व की फण सहित सुंदर मूर्तियाँ हैं। पास ही अन्नामलै पहाड़ी है, जिस पर जैन-पुरातत्त्व सामग्री प्रचुर परिमाण में मिलती है। यह स्थान अब ब्राह्मण समुदाय के अधिकार में है। यहाँ तीर्थंकर और शासन देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं और लेखों में अज्जनन्दी आदि आचार्यों का उल्लेख है। पास ही अलगरमलै पहाड़ी पर भी जैन-लेख हैं, जिनमें अज्जनन्दी का उल्लेख है। उसी के पास उत्तमपलैयं मुत्तषत्ति, कोंगर, पुलियंगुल किलक्कुडि, पेच्छिपल्लं, पोंयगैमलै, पंचपाण्डवमलै आदि अनेक स्थान हैं, जहाँ जैनपुरातत्त्व सामग्री बहुतायत में मिलती है। यहाँ तिरुक्कतम्बलै कुरंदी नामक एक जैनकेन्द्र है। उत्तमपलियम बिहार भी इसी के अंतर्गत रहा होगा, जहाँ अस्टोपवासी और अरिष्टनेमि आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं। इसके साथ ही माघनदि गुणसेन, वर्धमान काकनन्दी आर्यनन्दी आदि आचार्यों के उल्लेख हैं। इनका समय ७-८वीं शती है। ज्ञानसम्बन्धर राजा के शैव बन जाने पर जैनधर्म को अनेक आघात सहना पड़े। यानै मलै, नागमलै, समणमलै आदि नगर भी पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

सातवीं शती के बाद तमिलनाडु में जैनधर्म के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा है। संत अप्परै ने कांची में और सम्बन्दर ने मदुरै में जैनधर्म के विरोध में तीव्र आन्दोलन चलाया, फिर भी अज्जनन्दी जैनधर्म का प्रचार-प्रसार करते रहे।

तिन्नेवेल्लि क्षेत्र में कलुगुमलै में द्वितीय शती ई.पू. के लेखादि मिलते है। यहाँ की जैनकला देखने लायक है। आगे त्रावनकोर क्षेत्र में तिरुच्चरणत्तु मलै पहाड़ी पर जैन-मंदिर है, जो आज वैदिक समुदाय के अधिकार में है। यहाँ की महावीर और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ आज भी वैदिक देवता के रूप में पूजी जा रही हैं। नगर कोइलका जैनमंदिर नागराजस्वामी पर भी उन्हीं का अधिकार है। पार्श्वनाथ महावीर पद्मावती आदि तीर्थंकरों और शासनदेवी-देवताओं की मूर्तियाँ मुख्य मण्डल के स्तम्भों पर अभी भी उत्कीर्ण हैं। मूलरूप से वस्तुतः यह जैनमंदिर था जो यहाँ के लेखों से भी पुष्ट होता है। इनके अतिरिक्त कलुगुमलै, नागलापुर,कायल, धर्मपुरी, विजयमंगलं, महाबलिपुरं आदि स्थान भी ऐसे हैं, जहाँ जैनमंदिर और मूर्तियाँ भूगर्भ से प्राप्त हुई हैं।

कालीकट और पालघाट जिलों में और भी जैनकेन्द्र हैं। गणपतिवत्तम में एक बस्तीमंदिर है केरल-मैसूर रोड पर। एडक्कल गुफा के ऊपर बना मंदिर भी जैनमंदिर होना चाहिए। पालघाट में एक छोटा-सा मंदिर है। इसके अतिरिक्त मृत्तुपत्तन और मचलापट्टन में भी जैन मंदिर हैं। अलातूर में भी एक पुराना मंदिर है, जिसमें महावीर पर्यंकासन में है दूसरी मूर्ति पार्श्वनाथ की है, जिस पर तीन फण है, वह कायोत्सर्ग मुद्रा में है। एक लेख भी है।

तीरुच्चारणट्टमलै में एक सुंदर गुहा मंदिर है, जिसमें लगभग तीस मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। एक अन्य गुफा का नाम श्रान्तनपाडा है। इन गुफाओं को देखने के बाद मंदिरों की संरचना पर ध्यान जाता है। सिलप्पदिकारम से कुणिवायिलकोंट्टम नामक जैन मंदिर का पता चलता है, जिसे हैदरअली ने नष्ट कर दिया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोडगन्लुर के जैनमंदिर द्राविड शैली के हैं, ग्रेनाइट पाषाण के हैं। पर आज वे वैष्णवों के हाथ में है। इसी तरह कहा जाता है कि वहाँ की मस्जिद वस्तुतः प्राचीन जैनमंदिर है। इरिजालकुडा का कूडल माणिक्यं नामक विशाल जैनमंदिर भी उल्लेखनीय है, जहाँ भरत की मूर्ति है और लेख भी।

त्रिचूर में बडक्कुन्नाथ है, जो शायद मूल रूप में जैनमंदिर रहा होगा। कोडिक्कोड में तुक्कोविल नामक एक श्वेताम्बरमंदिर है, जिसका निर्माण लगभग ५०० वर्ष पहले हुआ था। बंगर मंजेश्वर में एक चतुर्मुखी मंदिर है, जिसे सर्वतोभद्र कहा जाता है। वायनाड में मानदवाड़ी में एक आदीश्वर मंदिर है, जो प्राचीन मंदिर को ध्वस्तकर खड़ा किया गया है। फिर भी कहीं-कहीं प्राचीनता के निशान बचे रह गए। सुल्तान बत्तारी का जैनमंदिर भी आज खण्डहर के रूप में पड़ा हुआ है। ऐसे ही प्राचीन जैन - मंदिरों में पालक्काड और नागरकोविल के तथा गोदपुर अलातूर, मूंडर किण्णालूर आदि स्थानों के जैन - मंदिर भी उल्लेखनीय हैं। उनमें अलातूर मंदिर विशेष उल्लेखनीय है जो कांगुदेश से संबद्ध है। यह कांगुदेश और उसके राजगण जैन धर्म के संरक्षक रहे हैं। यहाँ प्राप्त लेखों में जैन-मंदिरों को दान देने के उल्लेख हैं। ये लेख ११०२ ई. के हैं।

त्रिचिरापल्लै जिले के पुगलुर गाँव के आसपास पाई गई गुफाएँ और अरुनत्तुर की पहाडियाँ तथा कोयम्बतूर जिले की अरच्चलूर (नागमलै) की पहाड़ियाँ भी जैन-संस्कृति की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। दक्षिण उत्तर अर्काट जिले के विदुर, पोन्नुर तिरुनरुंगोंडई, चित्तमुर, तोण्डईमंडल आदि नगरों में प्राप्त जैन- मंदिर, मूर्तियाँ और गुफाएँ भी अनेक कालों की कला को समाहित किए हुए हैं। यहां प्राप्त जैन शिलालेख दिगम्बर जैन संप्रदाय के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मद्रास का तिरुवल्लुवर मंदिर वह है, जहाँ तिरुवकुरल काव्य लिखा गया था। तिरुमलै और मैलापोट तथा पुदुक्कोट्टई, तेनिमलै, नस्तमलै, अनुरुत्तुमलै, बोम्मईमलै, मलयक्कोइल, पुत्तम्बर, छेत्तिपत्ति, कयम्पत्ति, अन्नवसल, कन्नंगुडि, छित्तिर सेम पचुर आदि स्थान भी जैन इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से विशेष दृष्टव्य हैं। पुझल कोटलं, जिंगिरि, मेलचित्तमुर, पोलुन्नुरमलै मुनिगिरि, मन्नरगुडी, विजयमंगलं आदि सैकड़ों ऐसे स्थल हैं, जहाँ ईसा पूर्व से लेकर १५वीं शताब्दी तक का समृद्ध जैन-पुरातत्त्व मिलता है। तमिलनाडु वस्तुतः जैन-पुरातत्त्व की दृष्टि से बहुत ही समृद्ध है।

इस प्रकार पिछले लगभग दो हजार वर्षों से तमिलनाडु में जैनसंस्कृति अस्तित्व में बनी रही है। अस्तित्व में ही नहीं बल्कि वहाँ के साहित्य और संस्कृति को भी प्रभावित किया है। प्रारंभिक तमिल-साहित्य मूलतः जैनों का अधिक रहा है। वह वीरशैवों और वैदिकों द्वारा नष्ट किए जाने के बावजूद अपना योगदान बनाए रखे रहा। अब अधिकांश मंदिरों पर वैदिकों का अधिकार है।

पल्लव महेन्द्रवर्मन और पांड्यराजा कुनपाड्यन जैन थे पर वे बाद में शैव अप्पार और ज्ञान संबन्धर द्वारा ब्राह्मणधर्म में प्रविष्ट कर लिए गए। यह प्रक्रिया होयसल राज्यकाल तक चलती रही। होयसल सम्राट् विट्टीगा जैन था पर रामानुज ने उसे वैष्णव बना लिया।

दक्षिण जैन-स्थापत्य-कला की यह विशेषता रही है कि यहाँ के जैनमंदिर और गुफाएँ जैन-साधुओं के निवास स्थान थे, जिन्हें इतनी उत्कृष्टता से ग्रेनाइट के विशाल पत्थरों पर चिकनाई सहित तराशा गया है कि हमें मौर्यकालीन बलुआ पत्थरों को चमकाने की दक्षता का स्मरण हो आता है। चट्टान काटकर मंदिर निर्माण किए जाने की प्रथा जैनों में लगभग सातवीं शती तक रही है।

यहाँ हम कुछ और विशेषस्थानों का उल्लेख कर रहे है जो पुरातत्त्व की दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण हैं। चेंगलपट्टु जिले के मगरल में एक अजैन मंदिर में दो जैन मूर्तियां रखी हुई हैं। इसी तरह आरपाक्क विषार, विल्लिवाक्कम, पेरुनगर आदि स्थानों पर जैनमूर्तियाँ और स्थापत्य असुरक्षित सा पड़ा हुआ है। उत्तर अर्कांड जिले के कच्चूर,नंवाक्क, कावनूरु, कुट्टैनवल्लूर, तिरुमणि, सेवूर, अनन्तपुर, आरणि, पुनताकै, तिरुवोत्तूर, तिरुप्पननूर, करन्दै, पूण्डि, पोन्नूर, पोन्नूरमलै, तिरुक्कोनि वेणुकुन्टु जैसे कुछ ऐसे जैन स्थल हैं, जहाँ जैन मूर्तियाँ और मंदिर हैं पर अच्छी स्थिति में नहीं है। नंवाक्क, पुनताक्कै, तिरुवोत्तूर, वल्लिमलै, मयिलापुर आदि ऐसे स्थान है, जहाँ के जैनमंदिरों को वैदिक मंदिरों में परिवर्तित कर दिया गया है।

दक्षिण आर्काड जिले में कीलकुप्प स्थान से एक सुंदर जैन-मूर्ति जमीन से निकली थी, कुछ समय पहले। तिरुमदिकै और तिरुप्पापुलियूर में गुणधरवीच्चुर जैसे अनेक शैव मंदिर ऐसे हैं, जो मूलतः जैनमंदिर थे। यहाँ धर्मसेन ने किसी कारणवश शैव बनकर जैनधर्म पर बड़ा अत्याचार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरुकडवूर में एक तालाब की चट्टान पर २८ तीर्थंकरों की सौम्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। तृतीय शती की एक प्राचीन गुफा भी है यहाँ। मेलचित्तामूर में एक पुरातन मंदिर है, जिसमें प्राचीन जैन मूर्तियाँ हैं। कूष्माण्डनी देवी की भी मूर्ति है। यहाँ के मठ में समृद्ध शास्त्रभंडार भी है। तोण्डूर, तायनूर, पेरुम्बुगै, सनुक्के, मुदलूर, सातमंगल, गुडलूर, सीयमंगल,सीदमंगल, विलुक्कं, वोल्लिमेडुपेट्टै, पेरणी, तिरुनंरुकन्डं, सोलवाण्डिपुरं आदि कतिपय ऐसे प्राचीन स्थान हैं, जहाँ पुराने जैनमंदिर तो हैं ही साथ ही भूगर्भ से मूर्तियाँ भी निकली हैं।यहाँ शासन देवी-देवताओं की भी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें कूष्णाण्डी और पद्मावती देवी की मूर्तियाँ अधिक लोकप्रिय रही है।

तंजाऊर जिले के तंजाऊर नगरमें आदिनाथ का प्राचीन जिनालय है, जिसमें सरस्वती, ब्रह्मदेव, ज्वालामालिनी और कूष्मांडिनी देवियों के मंदिर हैं। तिरुप्पपुगलूर का शैवमंदिर मूलतः जैनमंदिर था। तिरुनाकेश्वर के भी शैवमंदिर जैनमंदिरों के परिवर्तित रूप हैं। मन्नारगुडि और दीपंगुडि का ज्वालामालिनी मंदिर भी दर्शनीय है। रामनाथपुर जिले के कोविलंकुल में किडार, पेरिथपट्टनं, मंजियूर, सेलवनूर, तिरुनेलवेली जिले के एरुवाडि, अरुगमंगलं, कुलुगुमलै, कायल, बलियूर, कोयंपुत्तूर जिले के धर्मपुरी, विजयमंगल, तिरुमूर्तिमलै, कडुलूर (ओटी), कुंभकोण आदि स्थानों पर जैनमूर्तियाँ और मंदिर बिखरे पड़े हुए हैं।

तमिलनाडु वस्तुतः कर्नाटक के बाद ऐसा दक्षिणवर्ती जैन प्रदेश है, जहाँ कला और स्थापत्य के साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलंक जैसे दार्शनिक हुए और संलप्पदिकारं, नीलकेशि तिरुक्कुरल आदि जैसे ग्रंथ लिखे गए।

मंगलूर जिले का कारकल एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा है। यहाँ के सान्तर राजा जैनधर्म के अनुयायी रहे हैं। यह शिलालेखों से प्रमाणित है। कहा जाता है पद्मावती देवी ने उनकी सहायता की थी, भैरवी का रूप धारण कर। तबसे इन राजाओं के नाम के साथ भैरव जुड़ गया। यहाँ की प्रसिद्ध मूर्ति भगवान गोमटेश बाहुबली की है, जो ४२ फीट ऊँची है। यह मूर्ति एक छोटी पहाड़ी पर अवस्थित है। १३ फरवरी १४३२ में प्रतिष्ठापित यह मूर्ति बड़ी कलात्मक और मनोहर है। उसके सामने ब्रह्मदेव मानस्तम्भ है, जिसके ऊपर लिखा है इसे जिनदत्त के वंशज भैरवपुत्र वीर पाण्डव नृपति ने बनवाया। इसी स्थान पर और भी अनेक वसदियाँ है जो पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

कारकल के पास ही मूडबिद्री अथवा वेणुपुर भी एक अच्छा स्थान है। कहा जाता है यहाँ भगवान पार्श्वनाथ और महावीर ने भी बिहार किया था। लगभग ५वीं शताब्दी से यहाँ जैनधर्म का अस्तित्व मिलता है। वैसे यहाँ की जैनपरंपरा तो बहुत पुरानी है। हेमांगद देश यहीं था, जिसके जैन राजा जीवन्धर थे और सलुववंशीय अनेक राजा भी जैन थे। यहाँ अनेक बसदियाँ हैं, जिनमें त्रिभुवन तिलकमणि मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। इसी तरह चंद्रनाथ वसदि का भैरोदेवी मण्डप, अम्मनवार वसदि की पंक्तिबद्ध चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, चोटार महल में काष्ठ स्तम्भ पर उत्कीर्ण नवनारीकुंजर, सिद्धांत वसदि विशेष उल्लेखनीय है। इसके साथ ही धर्मस्थल की ३९ फीट की बाहुबली मूर्ति, हलेबिड की शान्तलेश्वर वसदि और होयसलेश्वर वसदि भी पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी हैं। यहाँ सुरक्षित कन्नड और संस्कृत के शिलालेख इतिहास की दृष्टि से आकलनीय हैं।

श्रमणबेलगोल कर्नाटक का प्रमुखतम स्थल है, जहां पुरातत्त्व का हर भाग लहराता रहा है। इसलिए हम यहाँ इसे कुछ विस्तार के साथ प्रस्तुत करना चाहेंगे।

कर्नाटक

प्राकृतिक सौन्दर्य से हरा-भरा स्थल, लंबे-चौड़े मैदानों से घिरी पहाड़ियाँ, श्वेत सरोवर (बेलगोला) को गोद में समेटे मनमोहक बसदियां, नारियल, सुपारी आदि वृक्षों को बगल में दबाए रोड मानो गोमटेश मूर्ति की ओर निष्पलक निहार रहे हैं। बेंगलौर से १४५ कि.मी. और मैसूर से ११० कि.मी. पर बसे इस छोटे परंतु रमणीय कस्बे में प्राचीन जैन संस्कृति की गहरी छाप दिखाई देती है। लगता है, लगभग ई.पू. तीसरी सदी के श्रुतकेवली भद्रबाहु और उनके शिष्य चंद्रगुप्त ससंघ आज भी कहीं श्रवणबेलगोला के आसपास रहकर नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्ती के शिष्य चामुण्डराय द्वारा निर्मित विश्वविश्रुत भगवान् बाहुबली की मूर्ति की पूजा कर रहे हों।

श्रवणबेलगोला परिकर में चार स्मारक हैं-(१) छोटा पहाड़ (चिक्क बेट्ट)-चंद्रगिरि, (२) बड़ा पहाड़ (दोड्डुवेट्ट)- विन्ध्यगिरि, (३) नगर और (४) जिननाथपुर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) छोटा पहाड़ (चंद्रगिरि)

अपर नाम इंद्रगिरि, कटवप्र, कालवप्पु, तीर्थगिरि, ऋषगिरि आदि। अनेक साधुओं का समाधिस्थल। ७वीं सदी तक घने जंगल से घिरी पहाड़ी पर ९-१०वीं सदी से उसका रूप परिवर्तित। आचार्य भद्रबाहु और उनके शिष्य प्रभाचंद्र (सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य) की तपोभूमि और समाधिस्थल। २७१ शिलालेख प्राप्त। उनमें प्राचीनतम वह शिलालेख (छठी सदी) जिसमें इन दोनों आचार्यों का उल्लेख। यहीं वह भी स्थल जहां से चामुण्डराय ने विन्ध्यगिरि पर बाण छोड़कर गोमटेश मूर्ति के शीर्ष भाग को प्रकट किया था।

नगर की बायीं और बड़ी-बड़ी चट्टानों से भरा २४० सीढ़ियां और ९३५ फुट की समानान्तर भूमि के बाद मुत्तालय स्मारकों का प्रारंभ। बीच में लगभग १६वीं सदी का तोरण। सुत्तालय के पूर्व प्राकृतिक भद्रबाहु गुहा जिसमें भद्रबाहु और चंद्रगुप्त के पद चिह्न ११वीं सदी में निर्मित। बाद में वह मंदिर में परिवर्तित। सुत्तालय के पास एक तालाब। सुत्तालय में १३ मंदिर, ७ मंडप, २ स्तम्भ और एक विराट मूर्ति। दक्षिण प्रवेश द्वार पर गंगकला का मनोहारी नमूना कूगे ब्रह्मदेव मानस्तम्भ। दायीं और शांतिनाथ वसदि में ११वीं सदी में निर्मित शांतिनाथ की १३ फीट ऊंची मूर्ति। इसके उत्तर में लोहे के घेरे में खड़ी बाहुबली के भाई भरत की ९ फीट की विशालकाय मूर्ति। कलाकार अरिष्टनेमि का कदाचित् प्रारंभिक प्रयोग। इसके पूर्व युगल महानवमि मंडप (१२वीं सदी में होयसल राजा नरसिंह प्रथम द्वारा निर्मित)। दोनों वसदियों के बीच छठी सदी का प्राचीनतम शिलालेख जिसमें भद्रबाहु, चंद्रगुप्त, द्वादशवर्षीय अकाल आदि का वर्णन है।

द्राविड़ शैली में निर्मित पार्श्वनाथ वसदि। उसके गर्भगृह में १५ फीट ऊंची पार्श्वनाथ सप्तफण युक्त श्यामवर्ण की मनोज्ञ मूर्ति (११वीं सदी)। सामने मानस्तम्भ (१७५० ई.), दायीं ओर पद्मावती की मूर्ति और आसपास यक्षमूर्ति, कूष्माण्डिनी देवी और घुड़सवार की मूर्ति। इस वसदि के उत्तर में चंद्रगुप्त वसदि (९वीं सदी)। उसमें तीन कोठरियाँ जिसमें पार्श्वनाथ, पद्मावती और कूष्माण्डिनी देवी की विशाल मूर्तियाँ १२वीं सदी की होयसल कलाकारी में निर्मित। बरामदे में गंग कलाकारी में निर्मित धरणेन्द्र और सर्वाण्ह यक्ष की मूर्तियां। सामने सभा भवन में क्षेत्रपाल की मूर्ति। अलंकृत द्वार के दोनों ओर जालीदार पाषाण में ९० चित्र फलक हैं (१२वीं सदी) जिनका संबंध चंद्रगुप्त और भद्रबाहु के जीवन से है। कत्तले वसदि (१११८ ई. में निर्मित) में आदिनाथ की मूर्ति है। अब इस मंदिर में अंधेरा (कत्तले) नहीं है, प्रकाश की व्यवस्था है। प्रदक्षिणा पथ इसकी विशेषता है। गंगराज सेनापति ने इसे बनवाया था। मज्जिगण वसदि में १४वें तीर्थंकर अनन्तनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसकी पश्चिम दिशा में शासन वसदि है। जिसका निर्माण १११८ ई. में होय्यसल नरेश विष्णुवर्धन के सेनापति गंगराज ने कराया। शासन वसदि और चामुण्डराय वसदि के बीच एक-दो स्मारक हैं, जिन्हें गंगराज मंडप कहते हैं। उसके पश्चिम में चंद्रप्रभ वसदि है, जिसका निर्माण गंगनरेश शिवमार द्वितीय ने ८वीं शती में किया। इसमें अम्बिका और ज्वालामालिनी की आकर्षक मूर्तियाँ हैं। इस वसदि के बायीं ओर सुपार्श्वनाथ वसदि है, जिसमें सप्तफणयुक्त सुपार्श्वनाथ की मूर्ति है।

चंद्रगिरि पर्वत पर सर्वाधिक सुंदर द्रविड़ शैली में निर्मित चामुण्डराय वसदि है, जिसमें तीर्थंकर नेमिनाथ की ५ फीट की मनोज्ञ प्रतिमा है। गर्भगृह के दोनों और अलंकृत यक्ष सर्वाहण और दक्षिणी कूष्माण्डिनी निर्मित है। चामुण्डराय ने इसका निर्माण कराया जिसका अनुकरण होय्यसल नरेशों ने हेलिबिड आदि मंदिरों के निर्माण में किया। इसे चामुण्डराय के पुत्र जिनदेव ने ९९५ई. में बनवाया। यहां के एक अन्य लेख से पता चलता है कि बेलगोला के चेलोक्यरंजन नामक जैन मंदिर का निर्माण गंगराज के पुत्र एचन्ना ने ११३८ई. में कराया था। गंगाचारि इसका कलाकार था। इस तरह यह वसदि कई चरणों में बनाई गई।

इसी वसदि के समीप एड्डुकट्टे वसदि है, जिसका निर्माण गंगराज की पत्नी लक्ष्मी ने १११८ ई. में किया। इसके दायीं और सबतिगंधवारण वसदि है। जिसे होयसल नरेश विष्णुवर्धन की सर्वाधिक प्रिय जैन पत्नी शान्तला देवी ने ११२३ ई. में निर्मित किया। इसमें शांतिनाथ की पाँच फीट की मूर्ति और यक्ष किम्बपुरुष तथा यक्षी महामानसी की मूर्तियां हैं। इसके पूर्व तेरिन वसदि है, जिसे १११७ ई. में माचिकब्बे और शांतिकब्बे ने बनवाया। इसमें ४ फीट ऊंची बाहुबलिस्वामी की मूर्ति है, जिसे कर्नाटक परंपरा ने तीर्थंकर के समान पूजना प्रारंभ किया। अंत में शांतीश्वर वसदि है, जिसे गंगराज बोम्मण के पुत्र एचिमय्य ने बनवाया। सर्वाण्ह और अंबिका की भी मूर्तियां यहां है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परकोटे के कोने में राष्ट्रकूट-काल (९८२ ई.) में निर्मित एक मण्डप है, जिसमें राजा इंद्र चतुर्थ का समाधिलेख है। कुछ अन्य लेखों में गंगराज के परिवार के नामोल्लेख हैं। ऐसे कुछ और भी यहां मण्डप है, जहां समाधिलेख उत्कीर्ण है। परकोटे के बाहर ब्रह्मदेव मंदिर है, जिसमें १०वीं सदी के कुछ महत्त्वपूर्ण नामोल्लेख हैं।

(२) बड़ा पहाड़ (विन्ध्यगिरि)

विन्ध्यगिरि उल्टे कटोरे की आकृति में ६५० सीढ़ियों को समेटे ४३५ फीट ऊँचा सिर उठाए लगभग ५८ फीट ऊँची भ. बाहुबलि की मनोज्ञ मूर्ति को समाहित किए हुए है। इसका इतिहास ई. सन् ९८० से प्रारंभ होता है। मूर्ति के निर्माण के साथ। बाद में १२वीं सदी में परकोटा, मूर्ति के समीप दो परिचारक, अष्टदिक्पाल, द्वारमण्डप, मानस्तम्भ और दो कोठरियाँ जोड़ी गईं। अनन्तर अन्य वसदियां भी।

सीढ़ियों पर चढ़ते ही बाईं और ब्रह्मदेव का मंदिर (१८७८ ई.) है। बाद में कुछ ऊपर चढ़कर तोरणपथ मिलता है, जिसे १४वीं सदी में बनाया गया। उस पर धरणेन्द्र और गजलक्ष्मी के चित्र उकेरे गए हैं। यहीं बाहरी किले का प्रवेश द्वार (१८वीं सदी) मिलता है। भीतर जाने पर दायीं ओर एक मंदिर है जो २४ तीर्थंकरों को समर्पित है (१७वीं सदी)। वहीं ओदेगल वसदि (त्रिकूट वस्ती) है, जो सबसे ऊँचा है। १२ स्तम्भों वाला द्वारमण्डप, तीन गर्भगृहों में तीन विशाल मूर्तियाँ और होयसल कला की अभिव्यक्ति यहाँ है। इसमें २७ अभिलेख हैं।

इसके पश्चिम में चागद कंभ (कलात्मक त्यागद स्तम्भ है (१०वीं सदी) जहाँ चामुण्डराय ने संसार त्याग किया था। यह स्तम्भ गंग कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है। इसके दायीं ओर दो मूर्तियाँ हैं, जो शायद चामुण्डराय और नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की है। यहीं पास ही दो तलैया हैं और एक खुला भवन बारह स्तम्भों वाला। इसका निर्माण चेन्नण ने किया १७वीं सदी में। इसी चेन्नण व सदि में एक सुंदर मानस्तम्भ भी है।

चागद कंभ से आगे चढ़ने पर अखण्ड बागिलु (द्वार) है जो एक ही शिला को काटकर बनाया गया है। इसके ऊपर गजलक्ष्मी का बहुत सुंदर चित्र है, पास ही दो कोठरियाँ हैं, जिनमें भरत बाहुबलि की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह सब निर्माण १०वीं-११वीं सदी में विष्णुवर्धन के सेनापति भरतमय्य ने कराया। बाद में उनसे लगा हुआ खुला मण्डप जोड़ा गया।

अखण्ड बागिलु से कुछ आगे बढ़ने पर तीसरा तोरण आता है जो कचिन गुब्बि बागिलु कहलाता है और २१ सीढ़ियों बाद एक और तोरण आता है जिसे गुल्लेकायि अज्जि बागिलु कहा जाता है। यहाँ से प्राकार प्रारंभ होता है, जिसे होयसल नरेश विष्णुवर्धन के सेनापति एवं अमात्य गंगराज ने १११७ ई. के लगभग बनवाया था। इस प्राकार के भीतर विभिन्न देव-देवियों की ४३ मूर्तियाँ हैं। परकोटा बनने के पूर्व यहाँ गोम्मटेश्वर मूर्ति का निर्माण हो चुका था। इस मूर्ति के सामने खड़े होने पर बायीं और सिद्धर वसदि है, जिसमें सिद्ध भगवान की तीन फीट ऊँची मूर्ति है और उसके दोनों ओर दो कलात्मक छह फीट ऊँचे स्तम्भ है।

पश्चिमी ओर ओडेया मण्डप है, जिसमें पत्थर के आधार पर तीन मूर्तियाँ खड़ी है-नेमिनाथ, आदिनाथ और शांतिनाथ। इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण लेख भी हैं। सामने गुल्लेकायि अज्जि मण्डप है, जिसमें पाँच स्तम्भ, एक शिलालेख और एक वृद्धा की मूर्ति है। यह अज्जि कुरती और चुनरे वाली साड़ी पहने है। इसका निर्माण १७वीं सदी में हुआ है। कहा जाता है, अज्जि की ही मूल भूमिका थी बाहुबलि स्वामी के मस्तकाभिषेक करने-कराने में। दन्तकथा के अनुसार यक्षि पद्मावती ने चामुण्डराय का दर्द दलन करने के लिए वृद्धा का रूप धारण किया। नगर को भी बिलिगुल्ल (बेंगन) नाम दिया गया। वृद्धा ने इसी फल के खोल से भगवान का अभिषेक किया था।

अज्जिमण्डप के साने वाले खुले प्रांगण में गोम्मटेश्वर की भव्य मूर्ति खड़ी है। बाह्य द्वारमण्डप में १७-१८वीं सदी में निर्मित दो द्वारपाल शोभित हैं। प्रवेश-द्वार के बायी ओर १२वीं सदी के कवि बोप्पण पंडित का शिलालेख है, जो गोम्मटेश की मूर्ति की चमत्कारात्मकता का वर्णन करता है। भीतरी मण्डप में अष्टदिक्पाल हैं और खुले प्रांगण में गोम्मटेश की मूर्ति अपनी भव्यता को प्रकट कर रही है। ५८'८" ऊँची इस मूर्ति को ई. ९८० में गंगराज सेनापति चामुण्डराय ने प्रतिष्ठापित किया था। इस विराट मूर्ति को चट्टान से काटकर कुशल शिल्पी अरिष्टनेमि ने गोम्मटेश का रूप दिया। इसके घुँघराले केश, नुकीली नासिका, अर्धनिमीलित नेत्र, सुंदर ओंठ, व्यवस्थित ठुड्डी, २६' चौड़ा वक्षस्थल देखते ही बनता है। इस मूर्ति के माप के बारे में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पर १९८० में भारतीय कला इतिहास संस्थान, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ ने थियोडलैट उपकरण के माध्यम से जो माप प्रस्तुत की है, वह अधिक विश्वसनीय है। तदनुसार उसका कुल माप ५८' ८" आता है, जो इस प्रकार है--

पाँव की ऊँचाई	२'८"
पाँव के आदि से घुटने तक	१५' २"
पाँव के आदि से कमर रेखा तक	३१' ४"
पाँव के आदि से नाभि तक	३५' १"
पाँव के आदि से गर्दन रेखा तक	५७' ८"
घुटने से कमर रेखा तक	१६' २"
कमर रेखा से नाभि तक	२' ९"
नाभि से गर्दन रेखा तक	२०' ११"
गर्दन रेखा से गर्दन तक	२' ८"
गर्दन से सिर की चोटी तक	११' ०'
बाहुओ की लम्बाई	३०' ०"
शिश्न की लम्बाई	४' ०"
कानों से की लम्बाई	५' १०"
नाक की लम्बाई	३' ९"
हाथ की लम्बाई	
(क) कलाई से बीच की अंगुली लम्बाई	८' ०"
(ख) कलाई से तर्जनी तक लम्बाई	७' ०"
(ग) कलाई अंगूठा तक	५' ०"
कुल ऊँचाई	५८' ८"

एक ही पत्थर से बनी निराधार खड़ी इतनी विशाल मूर्ति निश्चित ही दुनिया में अद्वितीय कही जासकती है। बामियान (अफगानिस्तान) की बुद्ध मूर्तियां १२०, और १७५' अवश्य है, पर वे एक शिलाखण्ड से निर्मित नहीं है। रयाम्सीज २ की मूर्ति (ईजिप्ट) लगभग गोमटेश की ऊँचाई के बराबर है, पर वह मूर्ति न देवता की है और न ही निराधार खड़ी है। मेम्नान की मूर्ति और चाप्रोन का स्फिंक्स भी भले ही लगभग दस फीट बड़े हों पर वे एक ही पाषाण खण्ड से बनी कलाकृति नहीं हैं।

गोमटेश की मूर्ति के वल्मीक पर विशाल चरणों के चारों ओर कन्नड़, तमिल और मराठी में शिलालेख उत्कीर्ण हैं, जो यह घोषित करते हैं कि इस मूर्ति का प्रतिष्ठापक चामुण्डराय है। इसी मूर्ति के बायें चरण के पास एक गोल पत्थर का कुंण्ड है, जो कदाचित् गन्धोदक को इकट्ठा करने के निमित्त बनाया गया है। यहीं १२वीं सदी में दो द्वारपालों की मूर्तियाँ गंगराज ने बनवाई साथ ही परकोटे की दीवार और जालान्ध्र का निर्माण कराया। दूसरे द्वारमण्डप में यक्ष मूर्ति और मानस्तम्भ को बलदेव ने बनवाया। लगभग ५०० वर्षों के बाद स्तम्भों को अलंकृत किया गया ओर फर्श बनाया गया। सुत्तालय में गोमटेश मूर्ति के तीनों और चौबीसी मूर्तियाँ तथा अंबिका की मूर्ति है, जिन्हें समय-समय पर अनेक श्रेष्ठियों ने प्रतिष्ठापित कराया था।

(३) श्रवणबेलगोल नगर

गोमटेश मूर्ति की स्थापना के बाद इस नगर को गोम्मटपुर कहा जाने लगा लगभग १२वीं सदी में। इसके पूर्व वह 'बेल्गोल' के नाम से जाना जाता था, क्योंकि यहां धवल सरस् या तालाब था। धीरे-धीरे श्रद्धालु भक्तों और यात्रियों में वृद्धि होने लगी। फलतः पानी की कमी को दूर करने के लिए तालाब खोदे गए। ११२० और ११५९ ई. के बीच भंडार वसदि बनाई गई। समीप ही आवास स्थल बनवाए गए और छोटे पहाड़ के अधोभाग से अक्कन वसदि तक नगर फैल गया १२वीं सदी में। यहीं उत्तर की ओर १११७ ई. में गंगराज के भतीजे हिरिएचिमप्प ने जिननाथपुर की स्थापना की और अरेगल वसदि की स्थापना की। पश्चिम की ओर १२०० ई. में रेचणण दण्डनायक ने शान्तीश्वर वसदि बनाई। बाद में सिद्धांत वसदि और मांगायि वसदि जैसी अन्य वसदियाँ भी जुड़ती गईं और श्रवणबेलगोला नगर की सुंदरता बढ़ती चली गई।

भण्डार वसदि-- श्रवणबेलगोला का यह सबसे बड़ा जिनालय है। इसे होयसल राजा नरसिंह के भंडारी हुल्लमप्प ने ११५९ ई. में बनवाया था। इसके गर्भगृह में एक ही पंक्ति में चौबीस तीर्थंकरों की मनोज्ञ मूर्तियाँ विराजमान हैं। प्रवेशद्वार पर इन्द्र नृत्य की कलात्मक मूर्तियाँ है। नवरंग आकर्षक है और तीस फीट ऊँचे परकोटे में भी सुंदर आकृतियां उकेरी गई हैं। मंदिर के सामने भव्य मानस्तम्भ है जो उत्तरकाल में बनाया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंडार-वसदि में ईशान्य में जैनमठ है, जिसे मूलतः १२वीं सदी में बनाया गया था, पर उसका ३००-४०० वर्ष पूर्व नवीनीकरण हुआ है। इस मठ के भीतर के भित्तिचित्र और गर्भगृह की धातु-मूर्तियाँ तथा द्वार-मण्डप की गजाकृतियाँ विशेषतः दृष्टव्य हैं। इनकी संरचना १७-१८ वीं सदी में हुई है। ज्वालामालिनी, शारदा और कूष्माण्डिनी देवियों की भी यहाँ कलात्मक मूर्तियां हैं।

अक्कन-वसदि-- भण्डार वसदि से हम सीधे अंत में अक्कन वसदि पहुँचते हैं, यहाँ होयसल शैली में निर्मित गर्भगृह और प्रवेश - मण्डप निर्मित मिलते हैं। अलंकृत गर्भगृह में पार्श्वनाथ की सप्तफण-युक्त मूर्ति है, साथ ही मंदिर की प्रभावली में चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ और सुखनासि में यक्ष, धरणेन्द्र, यक्षिणी और पद्मावती की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इसका निर्माण ११०३ ई. में होयसल परिवार ने कराया। इस वसदि के घंटाकार स्तम्भ, कीर्तिमुख, शिखर आदि की अलंकृत द्राविड शैली की आकर्षक कलाकृतियाँ है।

इसके समीप ही मांगायि-वसदि है जिसे १३१५ में राजनर्तकी मांगायि ने बनवाया था। इसमें तीर्थंकर की रमणीय प्रतिमाएँ विराजित हैं। पश्चिम में सिद्धान्तवसदि है, जिसमें हमारे जैन - सिद्धान्त-ग्रन्थ धवला, जयधवला, महाधवला, भूवलय आदि सुरक्षित रखे गए थे। इसी के पास दानशाला-वसदि है।

श्रवणबेलगोला नगर के बीच एक कल्याण सरोवर है, जिसका जीर्णोद्धार चिक्कदेव राजेन्द्र महास्वामी ने लगभग १७०० ई. में किया। भण्डार-वसदि के दक्षिण में एक जक्की कट्टे नामक सरोवर है, जिसका निर्माण जक्कीम्मव्वे ने ११२० ई. में कराया था। दक्षिण में एक चेन्नड कुण्ड भी उल्लेखनीय है, जिसे चेनण्ण ने १६७३ में बनवाया था।

(४) जिननाथपुर

चन्द्रगिरि पर्वत के पीछे ब्रह्मदेव मंदिर के पास लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर जिननाथपुर नगर है, जिसे गंगराज सेनापति ने १११८ ई. में बसाया था। उसमें शांतिनाथ-वसदि होयसल कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस मंदिर के गर्भगृह में शांतिनाथ की साढ़े पाँच फीट ऊँची भव्य मूर्ति तथा बाह्य दीवारों पर यक्ष धरणेन्द्र, सरस्वती, अंबिका, मन्मथ, चक्रेश्वरी आदि की अनेक कलात्मक मूर्तियाँ अंकति हैं। इसी वसदि के समीप एक अरेगल्लु-वसदि है, जिसमें पार्श्वनाथ की पाँच फीट ऊँची प्रभावली - युक्त ग्यारह फणयुक्त पद्मासन मूर्ति संस्थापित है। इसे गंगराज के भाई हिरि एचिमय्य ने बनवाया था।

श्रवणबेलगोल के दक्षिण-पश्चिम में एक चौकोर समाधि मण्डप है जो आचार्य नेमिचन्द्र के शिष्य की निषध्या है (१२१३ ई.)। यहीं एक और निषध्या है, जो चारुकीर्ति की समाधि है (१६४३ ई.)।

श्रवणबेलगोल से ६ कि.मी. दूर उत्तर में हेलेवेलगोल है, जिसमें होयसल शैली का एक ध्वस्त जैनमंदिर है। एक अन्य ग्राम सार्णहल्ली ५ कि.मी. दूर तथा कम्बदहल्ली १८ कि.मी. दूर है, जहाँ गंगराज परिवार द्वारा निर्मित अनेक कलात्मक जैन - मंदिर दर्शनीय हैं।

श्रवणबेलगोल और उसके परिकर के मंदिरों का इतिहास नवीं सदी से प्रारंभ होता है। चन्द्रगिरि पर्वत पर ११२५ ई. के बाद का कोई मंदिर नहीं है पर विन्ध्यगिरि पर नवीं से १८वीं सदी तक की कलाकृतियाँ उपलब्ध होती हैं। चन्द्रगिरि स्थित चामुण्डराय वसदि सर्वाधिक अलंकृत है। इस नगर में लगभग ५३० शिलालेख मिलते हैं। इनमें २७४ चन्द्रगिरि पर, १७२ विन्ध्यगिरि पर और शेष नगर के आसपास मिले हैं। इनमें मराठी का एक प्राचीनतम शिलालेख भी है। ये सभी शिलालेख जैनधर्म और संस्कृति से संबद्ध हैं। चन्द्रगिरि की पार्श्वनाथ बस्ती में प्राप्त दो शिलालेख विशेष उल्लेखनीय है, जो भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त की दक्षिण - यात्रा का विवरण देते हैं। और उनकी समाधि-स्थली होने का संकेत करते हैं।

श्रवणबेलगोल का संबंध समाधिमरण से अधिक रहा है। यहाँ पर साधक आध्यात्मिक मरण की कामना लेकर आते हैं। यह सिलसिला १२वीं सदी तक चलता रहा, पर उसके बाद वह विरल हो गया। ऐसे स्मारक यहाँ लगभग १०० मिलते हैं।

यह नगर दिगम्बर जैन-संस्कृति का जीवन्त केन्द्र रहा है। इसमें गंगकला का उत्कृष्ट नमूना देखने को मिलता है। साथ ही भरत और बाहुबली की अनूठी प्रतिमाएँ; कलात्मक, ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक महत्त्व वाले भित्तिचित्र, यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियाँ भी दृष्टव्य हैं ।

इस नगर की जैन-संस्कृति का संरक्षण करने का उत्तरदायित्व चारुकीर्ति भट्टारक को रहा है। सर्वप्रथम इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख ११३१ ई. के शिलालेखों में मिलता है। बाद में १३१३ ई. तक उसका उल्लेख नहीं है। १४वीं सदी के प्रारंभिक काल में उसका उल्लेख मिलने लगता है। १३९८ ई. में चारुकीर्ति परंपरा में आने वाला व्यक्ति श्रुतकीर्तिदेव का शिष्य था। यह परंपरा १८५६ ई. तक चली। बाद में कदाचित् मुनि के स्थान पर भट्टारक का समावेश हुआ। १८५८ ई. के बाद के शिलालेखों में चारुकीर्ति मुनियों का उल्लेख नहीं मिलता। उसी परंपरा में वर्तमान भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी दीक्षित हुए हैं।

श्रवणबेलगोल इसी परंपरा में आज भी जैन-संस्कृति के संरक्षण का केन्द्र बना हुआ है। उसका मूल संबंध प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ और उनके पुत्र भरत बाहुबली से रहा है। राज्य के बँटवारे के समय भरत को अयोध्या और बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया गया। यह पोदनपुर भारत के उत्तरी भाग में था या दक्षिणापथ के किसी अंचल में, यह विषय विवादग्रस्त है। बाबू कामताप्रसाद जी ने उसे दक्षिणापथ में माना हैदराबाद के आसपास। शायद इसी धारणा से बंबई में वोरवली में पोदनपुर की स्थापना हुई। कतिपय विद्वान उसे अफगानिस्तान में रखते हैं।

इस प्रकार जैनधर्म दक्षिण भारत में खूब पनपा और उसकी कला-सम्पदा अनोखी रही। पुरातत्त्व में उसके जो चिह्न हमें मिलते हैं, उनका आलेखन हमने यहाँ संकेत में किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org